२५ गाथा हो गयी। नियमसार अजीव अधिकार। कारणपरमाणु और कार्यपरमाणु, जघन्य परमाणु और उत्कृष्ट परमाणु ऐसे चार का वर्णन किया है। कारणपरमाणु वह कि जो स्कन्ध है उसका कारण है, इसलिए उसे कारणपरमाणु कहा। उसी कारणपरमाणु को दोनों लागू पड़ते हैं। ऐसा है न पाठ में? **वही परमाणु...** ऐसा। जो परमाणु है, यह रजकण, पाईन्ट ऐसा एक वस्तु का स्वभाव। भले छाटा है परन्तु द्रव्य है। स्वभाव को किसी क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं है। एक परमाणु ऐसा स्वभाव है कि जो स्कन्ध का कारण होता है, उसी परमाणु में एक गुण आदि स्निग्धता हो तो बन्ध के अयोग्य है। उसी परमाणु को जघन्य परमाणु कहा जाता है। एक, दो, तीन आदि हों, दो-तीन, चार आदि, दो और दो चार या तीन और दो पाँच, वह आदि हो तो उसे-परमाणु को बन्ध के योग्य के कारण उत्कृष्ट कहा जाता है। देखो! यह एक वस्तु का - जड़ का स्वतः स्वभाव। उसे तो कुछ

खबर भी नहीं। खबर तो आत्मा को है कि ऐसा इसमें होता है। ऐसा परमाणु है। स्कन्ध का अन्तिम टुकड़ा। टुकड़े करते-करते बाकी रह जाये उसे कार्य परमाणु कहते हैं। ये चार प्रकार हुए। है तुम्हारे यहाँ उसमें ?

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में कहाँ से होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं ? क्यों कहाँ से होगा ? **इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्-कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (१६५वीं तथा १६६वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —**

'णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि वज्झन्ति हि आदिपरिहीणा॥

णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो॥'

इस ओर है, ५६ पृष्ठ। इसका अर्थ। **परमाणु के-परिणाम...** परमाणु जो एक रजकण, पाईण्ट है, उसके परिणाम अर्थात् पर्याय **स्निग्ध हों या रूक्ष हों,..** स्निग्ध हो या रूक्ष हो। **सम अंशवाले हों या विषम अंशवाले हों,...** दो अंशवाले, चार वाले, छह वाले हों या तीन, पाँच और सात वाले हों। **यदि समान की अपेक्षा दो अधिक अंशवाले हों,...** दो और दो चार, तीन और दो पाँच, सात और दो नौ, आठ और दो दस। इस प्रकार दो अधिकवाले हों तो **तो बँधते हैं;...** एक में नहीं बँधते। एक अंश परमाणु बन्ध के योग्य नहीं है।

इसी प्रकार आत्मा में भी अन्तिम गुण, अवगुण का जो अन्ति अंश है, वह उसके बन्ध का कारण नहीं है। समझ में आया ? यह क्या कहा ? मोह का, राग का, अन्तिम अंश है, वह स्वयं अपने बन्ध का कारण नहीं है। दूसरे के बन्ध का कारण हो। राग का अंश राग को बाँधे, ऐसा नहीं होता। समझ में आया ? हीराभाई !

यहाँ जैसे परमाणु में एक स्निग्धता या एक रूक्षता की पर्याय है, वह बन्ध के योग्य है नहीं। इसी प्रकार आत्मा में भी जो क्रोध, मान, माया, दर्शन, मोह, दर्शन में समकित मोह का भी उसका अन्तिम अंश है लो न, तो समकित मोह का अंश भी दर्शनमोह को नहीं बाँधता। अन्तिम अंश है न ? इसी प्रकार रागादि का अन्तिम अंश है वह उसके रागादि को

नहीं मानता। वह राग का अंश छह कर्म का बन्धन भले हो। ऐसा ही वस्तु का स्वतः स्वभाव है। आहा..हा..! यह गाथा कही। दूसरी गाथा। यह नहीं दूसरी गाथा। इसी और इसी की दूसरी।

स्निग्धरूप से दो अंशवाला परमाणु, चार अंशवाले स्निग्ध (अथवा रूक्ष) परमाणु के साथ बन्ध का अनुभव करता है... देखा, अनुभव करता है शब्द है। उसे अनुभव करना है कहाँ? परन्तु होता है। अनुसरण कर होता है। समझ में आया? **अथवा रूक्षता से तीन अंशवाला परमाणु,...** यह तो दृष्टान्त दिये हैं, हों! रूक्ष तीन वाला और यह तो स्निग्धता भी तीन वाला, पाँच वाला हो तो वह बन्ध का पाता है। **परमाणु, पाँच अंशवाले के साथ जुड़ा हुआ बँधता है।'** क्या कहा पण्डितजी! तीन रूक्षवाला, पाँच रूक्षवाले के साथ बँधता है तो दृष्टान्त। परन्तु तीन स्निग्धतावाला, पाँच स्निग्धतावाले के साथ बँधता है। दो और दो चार वाला, तीन और दो पाँच वाला, ऐसे रूक्ष या स्निग्ध चाहे जो हों, तद्नुसार बँधते हैं। एक नहीं बँधता। एकडे एक, बगड़े बे। एक अंशवाला नहीं बँधता। दो अंशवाला बँधता है। देखो, पुद्गल का भी ऐसा स्वभाव है। एक नहीं बँधता।

श्लोक-३९

और (२५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, श्लोक द्वारा पुद्गल की उपेक्षा करके, शुद्ध आत्मा की भावना करते हैं) :—

(अनुष्टुप्)

स्कन्धैस्तैः षट्प्रकारैः किं चतुर्भिरणुभिर्मम।
आत्मान-मक्षयं शुद्धं भावयामि मुहुर्मुहुः।।३९।।

(वीरछन्द)

छह प्रकार स्कन्धों या चौ विधि अणुओं से मुझको क्या?।
मैं तो अक्षय शुद्ध आत्मा को हूँ पुनः पुनः भाता॥३९॥

***श्लोकार्थ :*—उन छह प्रकार के स्कन्धों या चार प्रकार के अणुओं के साथ मुझे क्या है ? मैं तो अक्षय शुद्ध आत्मा को पुनः पुनः भाता हूँ॥३९॥**

श्लोक-३९ पर प्रवचन

स्कन्धैस्तैः षट्प्रकारैः किं चतुर्भिरणुभिर्मम।
आत्मान-मक्षयं शुद्धं भावयामि मुहुर्मुहुः।।३९।।

(श्लोकार्थ :—) उन छह प्रकार के स्कन्धों या चार प्रकार के अणुओं के साथ मुझे क्या है ?... पर चीज़ है। मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। वह भी मुझमें रहकर मेरे से जाननेवाला हूँ। आहा..हा..! **मैं तो अक्षय शुद्ध आत्मा को पुनः पुनः भाता हूँ।** मुझे आनन्द का प्रयोजन है तो मेरा आनन्द आत्मा सच्चिदानन्द है। उस आनन्द के अक्षयसुख। अक्षय शुद्ध आत्मा को मैं पुनः पुनः भाता हूँ। मेरा आनन्द का प्रयोजन है तो आनन्द तो मेरे पास है। ऐसे अक्षय-क्षय न हो ऐसा शुद्ध आत्मा, द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण, उसे मैं भाता हूँ। भाता हूँ, इसका अर्थ क्या हुआ? **पुनः पुनः भाता हूँ।** ऐसा पाठ है, लो। **भावयामि** और चिन्तयामि। विकल्प है यह?

मुमुक्षु : एकाग्रता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्रता की बात ली है। प्रत्येक अर्थ में फेरफार। शुद्ध आत्मा अक्षय, त्रिकाल ध्रुवस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसमें मैं एकाग्रता करता हूँ। मेरा तो यह काम है। परमाणु के प्रकार चार हो तो हो। मुझे उसके साथ प्रयोजन नहीं है। आहा..हा..! मेरा भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त स्वच्छता, शान्ति, स्थिरता इत्यादि शक्तियों से अक्षय शुद्ध आत्मा है। ऐसे आत्मा को मैं अन्तर्मुख होकर **पुनः पुनः भाता हूँ।** बारम्बार उसमें एकाग्रता करता हूँ। यह करना है। आहा..हा..!

देखो! यह सारांश कहा। अजीव जाननेयोग्य है परन्तु जानकर उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़कर स्वरूप का ध्यान, स्वरूप की भावना करनी है। समझ में आया?

२६, परमाणु का विशेष कथन।

गाथा-२६

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियग्गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणीहि।।२६।।

आत्माद्यात्ममध्यमात्मान्तं नैवेन्द्रियैर्ग्राह्यम्।
अविभागि यद्द्रव्यं परमाणुं तद् विजानीहि।।२६।।

परमाणुविशेषोक्तिरियम्। यथा जीवानां नित्यानित्यनिगोदादिसिद्धक्षेत्रपर्यन्तस्थितानां सहजपरमपारिणामिकभावविवक्षासमाश्रयेण सहजनिश्चयनयेन स्वस्वरूपादप्रच्यवनत्वमुक्तं तथा परमाणुद्रव्याणां पञ्चमभावेन परमस्वभावत्वादात्मपरिणतेरात्मैवादिः, मध्यो हि आत्म-परिणतेरात्मैव अन्तोऽपि स्वस्यात्मैव परमाणुः। अतः न चेन्द्रियज्ञानगोचरत्वाद् अनिलानलादि-भिरविनश्वरत्वादविभागी हे शिष्य स परमाणुरिति त्वं तं जानीहि।

जो आदि में भी आप है मध्यान्त में भी आप ही।
अविभाग, इन्द्रिय ग्राह्य नहिं, परमाणु सत् जानो वही॥२६॥

अन्वयार्थ :—[आत्मादि] स्वयं ही जिसका आदि है, [आत्ममध्यम्] स्वयं ही जिसका मध्य है और [आत्मान्तम्] स्वयं ही जिसका अन्त है (अर्थात्, जिसके आदि में, मध्य में और अन्त में परमाणु का निजस्वरूप ही है), [न एव इन्द्रियैः ग्राह्यम्] जो इन्द्रियों से ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) नहीं है और [यद् अविभागि] जो अविभागी है, [तत्] वह [परमाणुं द्रव्यं] परमाणुद्रव्य [विजानीहि] जान।

टीका :—यह, परमाणु का विशेष कथन है।

जिस प्रकार सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले सहज निश्चयनय की अपेक्षा से, नित्य और अनित्य निगोद से लेकर सिद्धक्षेत्र पर्यन्त विद्यमान जीवों का निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है; उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से, परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति

का आदि है, स्वयं ही अपनी परिणति का मध्य है और स्वयं ही अपना अन्त भी है (अर्थात्, आदि में भी स्वयं ही, मध्य में भी स्वयं ही और अन्त में भी परमाणु स्वयं ही है; कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। जो ऐसा होने से, इन्द्रियगोचर न होने से, और पवन, अग्नि इत्यादि द्वारा नाश को प्राप्त न होने से, अविभागी है, उसे हे शिष्य! तू परमाणु जान।

गाथा-२६ पर प्रवचन

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियग्गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणीहि।।२६।।

आचार्य कहते हैं,

जो आदि में भी आप है मध्यान्त में भी आप ही।
अविभाग, इन्द्रिय ग्राह्य नहिं, परमाणु सत् जानो वही॥२६॥

आहा..हा..! इस परमाणु में भी छोटा क्षेत्र अनन्त गुण में असंख्यवें भाग का, तथापि जीव के अनन्त गुण की जितनी संख्या है, उतने गुण उसमें हैं। यह तो कैसे (जँचे)! जितने जीव के गुण की संख्या, उतने ही गुण की संख्या (परमाणु में है)। भले उसमें चैतन्य न हो, परन्तु जड़ की पर्याय-गुण की संख्या उतनी ही अनन्त उसमें है। क्या कहा? लो, दो बार कहा तो भी? हीरा में ऐसा कहते होंगे? एक आत्मा में जितने गुण हैं, उतने ही गुण परमाणु के-जड़ के हैं। वे नहीं परन्तु उतने। क्या कहा? पण्डितजी! जितने एक आत्मा में अनन्त गुण की संख्या, उतने ही गुण एक परमाणु में है। वैसे नहीं परन्तु उतने - संख्या से उतने ही हैं। क्या कहा? पण्डितजी!

मुमुक्षु : एक आत्मा में परमाणु जितने गुण हैं उतनी संख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : उतनी संख्या से। वे गुण नहीं। आत्मा में तो ज्ञान, आनन्द आदि है। समझ में आया? आहा..हा..! यह (आत्मा) तो असंख्य प्रदेशी, वह (परमाणु) एक प्रदेशी। वस्तुस्वभाव है, वह वस्तुस्वभाव है। ऐसा माहात्म्य आने पर वह तेरा स्वभाव, तेरा स्वभाव असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है, उसके गुणस्वभाव की चौड़ाई असंख्य प्रदेशी है। उस

परमाणु के गुण की तो एक प्रदेशी चौड़ाई है। तेरे गुण की असंख्य प्रदेशी चौड़ाई है। ऐसा अन्तरस्वभाव। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द पड़ा है, उसका आश्रय कर, उसकी भावना कर। बस, यह करना है। कर-करके, पढ़-पढ़कर, बहुत जानकर भी यह करना है। सुखी होना होवे तो (यह करना है)।

***टीका :*— यह, परमाणु का विशेष कथन है।**

जिस प्रकार सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले... क्या कहते हैं? देखो! आत्मा का त्रिकाल सहज स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले उसके कथन का और उसके भाव का आश्रय करनेवाले, **सहज निश्चयनय की अपेक्षा से,...** भगवान आत्मा स्वाभाविक परमपारिणामिक भाव की जिसमें विवक्षा करनी है। जिसमें उदय की, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की (अपेक्षा) नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव, परमस्वभावभाव। वह जिसमें कहना है, ऐसा सहज निश्चयनय। स्वाभाविक निश्चयनय। देखो! उस **निश्चयनय की अपेक्षा से,...** भगवान नित्य है। वह नित्य से कभी च्युत नहीं हुआ। परमपारिणामिकभाव स्वभाव से कभी च्युत हुआ ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

(नित्य) और अनित्य निगोद से लेकर सिद्धक्षेत्र पर्यन्त विद्यमान जीवों का... निगोद से लेकर यह सब पर्याय है न? वह सिद्ध तक। **जीवों का निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है;...** उस निगोद से लेकर सिद्ध की पर्याय तक में, सब उसके द्रव्य जो परमस्वभावभाव हैं, उनसे कभी च्युत नहीं हुए। आहा..हा..! समझ में आया? फिर से। हमारे सेठी! फिर फिर से कहते हैं न! फिर।

जो यह आत्मा नित्य वस्तु है। कैसी? स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव का कथन करनेवाला जो नय, उस नय की अपेक्षा से आत्मा त्रिकाली नित्य.. नित्य.. नित्य.. ध्रुव है। अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्तियों से भरपूर सहज तत्त्व पारिणामिक स्वभाव से नित्य है। वह आत्मा, इस अपेक्षा से सहज पारिणामिकभाव की - निश्चयनय की अपेक्षा से निगोद से लेकर सिद्ध तक की जो पर्यायवाले हैं, वे जीव भी ऐसे नित्य त्रिकाल हैं। वे नित्य से कभी च्युत नहीं हुए। आहा..हा..! वस्तु के स्वभाव की कथन करने की दिगम्बर सन्तों की शैली (अन्यत्र) कहीं है नहीं।

मुमुक्षु : अलौकिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक वस्तुस्वभाव वर्णन करते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात सुनने को दूसरे सम्प्रदाय में मिले, ऐसा नहीं है। ऐसी यह चीज़ है। क्योंकि वहाँ है नहीं। यह तो था उसमें से आया है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

परमाणु की व्याख्या करते हुए (कहते हैं) जैसे परमाणु स्वयं अपने से आदि, मध्य और अन्त है, वैसे आत्मा भी वस्तुस्वभाव से परमस्वभाव निश्चय से, निश्चयनय की अपेक्षा से वह स्वयं अपने से कभी च्युत हुआ नहीं। स्वयं ही अपनी आदि में, स्वयं ही अपने मध्य में, स्वयं ही अपने अन्त में वह वस्तु ध्रुव है, वह ऐसी की ऐसी है। समझ में आया?

(नित्य) और अनित्य निगोद से लेकर... पर्याय की बात है न? **सिद्धक्षेत्र पर्यन्त...** उस सिद्ध की पर्याय में भी, परमस्वभावभाव जो ध्रुव है, वह पर्याय में आया नहीं? वह ध्रुवरूप से च्युत हुआ नहीं। आहा..हा..! वह चैतन्य महाहीरा, उसकी कीमत क्या? जिसका मूल्यांकन करने से अपनी बुद्धि में मूल्यवाला हो जाता है। अमूल्य रहता नहीं। ऐसी यह चीज़ है। आहा..हा..! भगवान आत्मा परम सहज परमपारिणामिकभाव, सहज स्वाभाविक परमपारिणामिक (भाव), जिसे किसी पर्याय की, उदय की अपेक्षा नहीं, ऐसा जो स्वभाव है। ऐसा सहज निश्चय परमपारिणामिकभाव को कहनेवाला ऐसा सहज और निश्चय, ऐसा। ऐसा जो आत्मा, जैसे परमाणु की आदि, मध्य और अन्त में स्वयं ही है। वैसे आत्मा के परमपारिणामिकभाव में-नित्यता में स्वयं ही कायम है। उसमें से कभी हटा नहीं। आहा..हा..! **निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है;...** किस नय से?

मुमुक्षु : व्यवहारनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह निश्चय आया।

सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले... इसे कहने का आश्रय करनेवाला ऐसा निश्चयनय, उसकी अपेक्षा से वह स्वयं नित्य है। अनन्त जीव पर्याय में निगोद हो या पर्याय में त्रस हो या पर्याय में सिद्ध हो, तथापि उन जीवों का निज स्वरूप से अच्युतपना निश्चय से, नित्य से अच्युत है ऐसा कहने में आया है। आहा..हा..! देखो तो एक टीका! समझ में आया? कहते हैं कि निगोद की पर्यायें, सातवीं नरक के नारकी की पर्याय हो, अन्तिम ग्रैवेयक के मिथ्यादृष्टि की पर्याय हो, या क्षायिक समकिती

की पर्याय हो या सिद्ध की पर्याय हो, आहा..हा..! जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति प्रगट हुई है, ऐसी पर्याय हो, तथापि वस्तु जो नित्य है, उसमें से कभी च्युत नहीं हुई। आहा..हा..! समझ में आया?

उन रहे हुए जीवों का... वापिस बहुत अधिक अनन्त जीव हैं न? एक जीव नहीं। अनन्त आत्मायें हैं। निगोद से लेकर सिद्ध। वहाँ तक लिया न? निगोद के अनन्त आत्मायें और सिद्ध के अनन्त आत्मायें और बीच के साधक और बाधक ऐसे अनन्त आत्मायें। समझ में आया? अक्षर के अनन्तवें भाग की ज्ञान की पर्याय निगोद को खुली हुई बाकी है और केवलज्ञान की पर्याय पूर्ण विकसित है और बीच में साधक जीव को मोक्षमार्ग की पर्याय खुली हुई है और मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय आदि में सब आ गये। उनकी पर्याय में तीव्र मिथ्यात्व, गृहीत मिथ्यात्व की पर्याय परिणमित हुई है। या सिद्ध अनन्त केवलज्ञानरूप हुए हैं। आहा..हा..! तथापि वे जीव अपने नित्य ध्रुवस्वरूप से कभी च्युत नहीं हुए हैं। आहा..हा..! समझ में आया? पण्डितजी! वाह! दो लाईन में तो कितना समा दिया है!!

परमाणु जैसे अजीव पदार्थ को रहने के लिये किसी की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही अपने से है। स्वयं स्वयं से आदि में, मध्य में और अन्त में है। इसी प्रकार भगवान आत्मा निगोद से लेकर सिद्ध तक सब आ गये बीच में? बाघ और भालू, माँस के भक्षण करनेवाले की पर्याय। पर्याय उनकी है। बाकी माँस दूसरी भिन्न (पर्याय है)। ऐसी पर्याय में भी, सिद्ध की पर्याय में, तीव्र गृहीतमिथ्यात्व की पर्याय में भी... समझ में आया? आहा..हा..! वस्तु नित्य ध्रुव तो स्वयं से कभी हटी ही नहीं है, कभी वह पर्याय में आयी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? कहो, यह बात थी? देखो! बात है परमाणु की, उसमें आत्मा डाला।

उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से... देखो! **परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से,...** पंचम भाव की अपेक्षा से, हों! **परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से, परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति...** परिणति शब्द से यहाँ पर्याय नहीं लेना। क्योंकि यहाँ पंचम भाव की-त्रिकाल की अपेक्षा है। समझ में आया? परमाणु का जो त्रिकाली पंचम भाव है उसकी यहाँ बात है। नहीं तो उसकी पर्याय, वह पारिणामिकभाव की पर्याय है, परन्तु यहाँ वह सिद्ध नहीं करना है। पाठ में तो आदि स्वयं वस्तु है, परमाणु सूक्ष्म, वह स्वयं अपनी

आदि, स्वयं स्वयं का मध्य और स्वयं स्वयं का अन्त। समय कहने के लिये, दूसरा कुछ भेद है नहीं।

उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से... यह किसका पंचम भाव? परमाणु का। **परमाणु, द्रव्य का परमस्वभाव होने से,...** देखो! फिर ऐसा लिया न वहाँ? उसका परमस्वभाव है अर्थात् द्रव्य लिया। **परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति का आदि है,...** अर्थात् कि परमाणु स्वयं अपने भाव की आदि है, ऐसा। परिणति शब्द से यहाँ पर्याय नहीं, परन्तु उसका भाव। समझ में आया? **स्वयं ही अपनी परिणति का मध्य है...** अर्थात् स्वयं ही अपने स्वभाव का भी स्वयं ही मध्य है। वस्तु ध्रुव... ध्रुव... द्रव्य। आहा..हा..! **और स्वयं ही अपना अन्त भी है (अर्थात्, आदि में भी स्वयं ही,...)** ऐसा लिया है। देखो! साराँश। परिणति में यहाँ पंचम भाव है न यहाँ तो। और परमस्वभाव लिया है न? पंचम भाव में परमस्वभाव साथ में न लेकर बाद में लिया। अर्थात् वह द्रव्य ही सिद्ध करना है यहाँ तो। वस्तु परमाणु द्रव्य। आहा..हा..! अतीन्द्रिय वस्तु एक परमाणु, एक आकाश के प्रदेश में ऐसे अनन्त परमाणु के अनन्त स्कन्ध समाहित होते हैं, ऐसा एक परमाणु ऐसा है, कहते हैं। आहा..हा..! जिसकी आदि, अन्त और मध्य में वस्तु स्वयं ही है, बस। कहो, समझ में आया? स्वयं ही है।

(कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। क्या कहा? वह परमाणु जो द्रव्य है, वह कभी स्निग्धता-रूक्षता की पर्याय में नहीं आता। एक स्निग्ध गुण हो, दो हो या तीन हो; बन्धयोग्य हो या बन्ध के अयोग्य हो। वस्तु द्रव्य जो है, वस्तु पंचम भाववाला तत्त्व, वह कभी पर्याय में नहीं आता। ओहो..हो..! नहीं तो उसकी परमाणु की जो पर्याय है वह तो पारिणामिकभाव की ही पर्याय है, क्योंकि उसे कोई उदय या ऐसा कुछ है नहीं। परन्तु वह वस्तु जो त्रिकाल पंचम भाव है, वस्तु शक्ति, भाव-शक्ति। अरे! देखो तो सही! वस्तु छोटी-बड़ी ऐसा नहीं देखना। उसका स्वभाव (देखना)। अरे! ऐसे परमाणु का ऐसा स्वभाव है कि एक गुण की स्निग्धता हो, अनन्त गुण की स्निग्धता हो, एक गुण की रूक्षता हो, अनन्त गुण की रूक्षता हो। भारी रूप परिणमित हुआ हो या हल्के रूप परिणमित हुआ हो। तथापि परमाणु तो वह का वही है। वह भारी-हल्के में आया नहीं। समझ में आया? कहो, प्रकाशदासजी!! कभी आया था? तीन वर्ष में कभी सुना था? आहा..हा..!

(कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। अर्थात्? पंचम भाववाला अजीव परमाणु तत्त्व कभी अपनी पर्याय में नहीं आया। दुर्गन्ध पर्याय हो या सुगन्ध हो; स्निग्धता हो या रूक्षता की हो; शीत की हो या गर्म की हो या भारी की हो या हल्की की हो। परमाणु में भारी पर्याय होती है? है परमाणु की। भारी और हल्की पर्याय हुई है। देखो विशिष्टता! इसमें हल्की-भारी हुई है। परमाणु एक की, हों! और उसमें भिन्न है तथापि उस हल्की-भारी की पर्याय में वह पंचम भाव का द्रव्य नहीं आया। आहा..हा..! देखो न! कितना लॉजिक है या नहीं यह सब? कि तुम्हारा वकालात का लॉजिक होगा अकेला? वस्तुविज्ञान है। यह वस्तुविज्ञान है। आहा..हा..!

इसमें परमाणु भारी है या ऐसा का ऐसा रहा है? यह देखो इतने स्कन्ध में आने पर स्थिर हुआ या नहीं इतना? पर्याय स्कन्ध में आया तब होकर। पर के कारण हुई है? वह भी खोटी बात है। स्कन्ध में आया इसलिए परमाणु धारी हुई पर्यायरूप परिणमित हुआ है, यह मिथ्या बात है और भारी रूप पर्याय परिणमे तथापि द्रव्य उसमें पर्याय में आया है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वजुभाई! भाई! यह अभी पढ़ना हुआ। उस बार नहीं पड़ा था- पाँच वर्ष पहले यह अजीव का छोड़ दिया था। अजीव, व्यवहार और अन्तिम उपयोग, ये तीन छोड़ दिये थे। इस समय कहें, सब समान पढ़ना।

मुमुक्षु : क्या कहा? महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले वाँचन किया था, तब अधिकार छोड़ दिये थे। यह व्यवहार अधिकार है न? तो छोड़ दिया था। व्यवहार का अधिकार, यह अधिकार और अन्तिम उपयोग का (शुद्धोपयोग) अधिकार है। इस समय धारावाही लिया है। अच्छा किया, लो, हमारे वजुभाई कहते हैं।

मुमुक्षु : महाराज! व्यवहार तो निश्चय को बताता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर ऐसा है। व्यवहार निश्चय को बताता है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसा न मानना कि यह फिर परमाणु की ऐसी व्याख्या क्या? इस व्याख्या में भगवान समाहित हो जाता है। कहते हैं कि ऐसे परमाणु उसकी चाहे जो पर्यायरूप हुआ हो, भारी-हल्का। क्या कहलाता है फिर? दो, चार स्निग्धता-रूक्षता तो है। शीत-उष्ण तो उसमें आया? कठोर और कोमल। कठोर और कोमल पर्याय, भारी और हल्की पर्याय।

वह स्थूल में होती है। परमाणु में होती है। उस समय में भी वह परमाणु उसमें नहीं आया, द्रव्य उसमें नहीं आया। आहा..हा..! पर्याय पर्यायरूप से हुई, द्रव्य पर्यायरूप से आया नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य पर्यायरूप से आ जाये तो द्रव्य का नाश हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश हो जाये। परन्तु आता ही नहीं। दो अंश भिन्न हैं। आहा..हा..! समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा निगोद से लेकर कितने जीव लिये हैं। एक शरीर में अनन्त जीव, एक अंगुल के असंख्य भाग, शकरकन्द में, आलू में असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव, सिद्ध की अपेक्षा अनन्त गुने (जीव)। उन सबकी पर्याय भले अभव्य की पर्याय हो, कहते हैं। आहा..हा..! गृहीतमिथ्यात्व के तीव्र रूप से कषाय खाने के कारखाने लगाकर (बैठा हो), भाव में, हों! यह तो भाव की पर्याय। गाय और भैंस रखते हैं न ऐसे? ऊपर पड़े एकदम। उस ओर अलग और इस ओर अलग। ऐसे मिथ्यात्व की जो तीव्र कषाय की अवस्था है, उसमें भी द्रव्य तो नित्य है। वह द्रव्य उसमें आया नहीं। समझ में आया? और जो सिद्धरूप से परिणमे.. आहा..हा..! उस पर्यायरूप भी द्रव्य तो आया नहीं, कहते हैं। अहो! ऐसा का ऐसा है, कहते हैं। उसमें भेद या खण्ड कुछ है नहीं। आहा..हा..! ऐसा भगवान आत्मा, उसके अन्तर में एकाग्रता कर, वह तेरे कल्याण का मार्ग है। आहा..हा..! यह तो सब बातें करके मर गया, यह व्रत और यह तप। हैरान.. हैरान.. (हो गया)। काय-क्लेश। समझ में आया?

सहजानन्द प्रभु! सहजपरमपारिणामिकभाव को कहनेवाले ऐसे सहज निश्चयनय से वह तो ऐसा का ऐसा है। **जो ऐसा होने से,...** वह परमाणु **इन्द्रियगोचर न होने से,...** इन्द्रियगोचर नहीं है। **और पवन, अग्नि इत्यादि द्वारा नाश को प्राप्त न होने से, अविभागी है, उसे हे शिष्य! तू परमाणु जान।** उसे तू परमाणु जान। आहा..हा..! योगसार में तो कहा है कि छह द्रव्य को प्रयत्न से जान। ऐसी गाथा आती है। छह द्रव्य का व्यवहार ज्ञान भी तू प्रयत्न से जान।

श्लोक-४०

(अब, २६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:)

(अनुष्टुप्)

अप्यात्मनि स्थितिं बुद्ध्वा पुद्गलस्य जडात्मन:।
सिद्धास्ते किं न तिष्ठन्ति स्वस्वरूपे चिदात्मनि।।४०।।

(वीरछन्द)

जड़ पुद्गल की स्थिति पुद्गल में ही जो ऐसा जानें।
सिद्ध प्रभु वे निज चैतन्य स्वरूप मात्र में क्यों न रहें॥४०॥

***श्लोकार्थ :*—जड़ात्मक पुद्गल की स्थिति स्वयं में (पुद्गल में ही) जानकर (अर्थात्, जड़स्वरूप पुद्गल, पुद्गल के निज स्वरूप में ही रहते हैं — ऐसा जानकर), वे सिद्धभगवन्त, अपने चैतन्यात्मक स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे ?(अवश्य रहेंगे!)॥४०॥**

श्लोक-४० पर प्रवचन

अप्यात्मनि स्थितिं बुद्ध्वा पुद्गलस्य जडात्मन:।
सिद्धास्ते किं न तिष्ठन्ति स्वस्वरूपे चिदात्मनि।।४०।।

***श्लोकार्थ :*—जड़ात्मक पुद्गल की स्थिति स्वयं में (पुद्गल में ही) जानकर...** जब परमाणु भी ऐसा जड़ अपने में रहता है.. आहा..हा..! ऐसा कहते हैं। जिसे कुछ भान नहीं, जिसमें ज्ञान नहीं, ऐसा परमाणु भी स्वयं अपने में द्रव्यरूप से कायम रहता है। **(अर्थात्, जड़स्वरूप पुद्गल, पुद्गल के निज स्वरूप में ही रहते हैं—ऐसा जानकर), वे सिद्धभगवन्त, अपने चैतन्यात्मक स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे ?** जब परमाणु भी ऐसे द्रव्यस्वरूप में त्रिकाल रहता है तो सिद्धस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, सिद्ध भगवन्तों की व्याख्या भाषा ली है, परन्तु समस्त आत्माओं की बात है। अरे! यह आत्मा अपने द्रव्य में

क्यों नहीं रहेगा। द्रव्य तो ऐसा का ऐसा रहता है, वहाँ क्यों नहीं जाये ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? गजब बात, भाई ! दिगम्बर सन्तों की कथनी ! जड़ की हो तो भी अलग, चैतन्य की अलग, बातें अलग, भाई ! लोग मानते हैं कि यह सम्प्रदाय है। वाड़ा है ऐसा नहीं भगवान ! यह तो वस्तु की स्थिति की मर्यादा की बात है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आपने स्पष्टीकरण करके बताया, नहीं तो हमें कौन बताता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा.. ! भगवान ! जब परमाणु अपनी जड़ की स्थिति में से च्युत नहीं होता तो द्रव्यस्वभाव ऐसा भगवान अपने में अपने से कैसे हटे ? और वहाँ दृष्टि लगाकर उसमें रहे, ऐसा कहते हैं। वापस पर्याय में, हों ! ऐसा स्वरूप है, वह हटा नहीं। ऐसा जिसे ज्ञान होता है वह उसमें रहता है। रहा है ही। प्रत्येक का रहा है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! कहते हैं कि जड़स्वरूप पुद्गल जब अपनी जाति में रहता है, तो यह भगवान स्वयं द्रव्यस्वभाव जैसा है, उसमें क्यों न रहे अब ? पर्याय से क्यों न रहे ऐसा कहते हैं, हों ! समझ में आया ? इसकी ज्ञान की पर्याय में ऐसा आवे कि यह तो ऐसा का ऐसा है। तब इसने ऐसा का ऐसा है जाना कहलाये। पोपटभाई ! आहा..हा.. !

पोपट है वह नलिनी को पकड़कर ऐसे (उल्टा) हो गया। उसमें उड़ने की शक्ति तो है परन्तु ऐसा हो गया है इसलिए मानो में उल्टा हूँ (ऐसा मानता है)। ऐसे छोड़े तो एकदम उड़ जाये, भले ऐसे नीचे सिर हो। अरे ! ऐसा तेरा स्वभाव। परमाणु ने जब नित्यपना छोड़ा नहीं तो तेरा नित्य आनन्दकन्द प्रभु क्यों स्वयं को छोड़े ? ऐसी दृष्टि कैसे न करे ? और ऐसी स्थिरता क्यों न करे ? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहा..हा.. ! ऐई ! जेठालालभाई !

वह परमाणु नित्य है। ऐसा का ऐसा रहा है। ऐसा उसे उसकी पर्याय को खबर नहीं। परमाणु की पर्याय को खबर है ? उसकी पर्याय की इसे (जीव को) खबर है कि परमाणु ऐसा का ऐसा नित्य रहा है। इस प्रकार जब परमाणु ऐसा उसमें रहता है और पर्याय में आता नहीं, तो मैं एक द्रव्यस्वभाव त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, मैं कैसे पर्याय में आऊँ ? ऐसा मानते हुए पर्याय को द्रव्य में स्थिर करता है। समझ में आया ? वाडीभाई ! ऐसी लहर है दिगम्बर सन्तों की। आहा..हा.. ! ये मुनि हैं, इसलिए इनकी टीका मान्य नहीं ऐसा (कुछ लोग) कहते हैं। अरे ! भगवान ! यह तू क्या करता है ? भाई ! तुझे खबर नहीं। आहा..हा.. ! इनने कहाँ लेकर छोड़ा, देखो तो सही ! बात परमाणु की करते हैं और बात यहाँ कर डाली।

भाई! परमाणु की आदि-अन्त में स्वयं है। उसे कोई अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। उसे तो खबर भी नहीं कि आदि-मध्य में मैं का मैं हूँ या नहीं। उसके जाननेवाले की पर्याय में ऐसा आया कि यह तो ऐसा का ऐसा है। यह जाननेवाले की पर्याय, यह आत्मा ऐसा का ऐसा है, उसमें क्यों न स्थिर हो? ऐसा कहते हैं। हीराभाई!

(स्वरूप में ही रहते हैं — ऐसा जानकर)... जानकर कहा है न? **विहाण** था न? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं **विहाण,** ऐसा था न? विशेष जान परन्तु वापस इस जानने का प्रयोजन क्या? कि परमाणु ऐसा है... जिसने जिस ज्ञान की दशा ने एक-एक परमाणु ऐसे कितने? आत्मा की संख्या अपेक्षा अनन्तगुने। ऐसे परमाणु भी द्रव्य से ऐसे के ऐसे रहते हैं। ऐसी ही वस्तु की स्थिति है। इसकी तो उसे खबर नहीं। उसकी खबर करनेवाला यह ज्ञान, उसे जैसे द्रव्य को ऐसा का ऐसा है, ऐसा रहता है, ऐसा जानता है, तो तू भी ऐसा का ऐसा सहज पारिणामिकभाव से है। उसमें क्यों न स्थिर हो? उसमें क्यों न जाये? आहा..हा..! ऐ.. हीराभाई! ऊँचा किया है ऐसा।

अरे सिद्धभगवन्त। वे सिद्धभगवान ही यह आत्मा है। निश्चय से सिद्धभगवान ही है न। वस्तु स्वयं सिद्ध ही है। शुद्ध ध्रुव। वह **अपने चैतन्यात्मक...** चैतन्यरूप **स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे?** आहा..हा..! जब जिसके ज्ञान में ऐसा आया कि परमाणु द्रव्य, अनन्त-अनन्त जड़, जिन्हें कुछ ज्ञान नहीं, जिनकी कुछ खबर नहीं, हम जगत के तत्त्व है या नहीं ऐसी भी जिन्हें खबर नहीं। आहा..हा..! ऐसे तत्त्वों का, ऐसा का ऐसा द्रव्य रहता है-ऐसा जाननेवाला भगवान, वे अनन्त परमाणु द्रव्यरूप से तो ऐसे के ऐसे हैं। पर्याय में आये नहीं। ऐसा जाननेवाला पर्याय ज्ञान की, वह तेरा द्रव्य भी ऐसा का ऐसा है। बाहर आया नहीं। ऐसा स्वरूप सन्मुख निर्णय करके क्यों स्थिर न हो? आहा..!

(श्वेताम्बर के) ३२-४५ (सूत्र) पढ़ो तो यह मिले, ऐसा नहीं है। एक-एक लाईन में... आहा..हा..! यह दिगम्बर धर्म अर्थात् आत्मधर्म। छोटाभाई कहते थे कि अब यह दिगम्बर धर्म बाहर आया। नहीं तो छिप गया था। छोटाभाई कदोल रहते हैं न (वे कहते थे)। दिगम्बर धर्म कुछ गिनती में नहीं था। बाहर में श्वेताम्बर-श्वेताम्बर। अहमदाबाद में और सर्वत्र भाई दो-तीन दिन पहले कहते थे। भाई कहते थे छोटाभाई। अरे! दिगम्बर धर्म अर्थात् ऐसा आत्मा का सनातन स्वरूप। वह कोई पक्ष और वाड़ा नहीं है।

मुमुक्षु : समझानेवाला नहीं था, इसलिए कहाँ से बाहर आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिस समय हो ऐसा आवे न। कहो, समझ में आया ? आहा..हा.. ! गजब बात, भाई ! कारण परमाणु, कार्य परमाणु... निकालकर फिर डाला कि वह परमाणु पर्याय में नहीं आया, हों ! एक गुणरूप परिणमे... भाई ! गजब बात है। वस्तु की स्थिति तो प्रसिद्ध करने की पद्धति अलौकिक है। ओहो..हो.. ! जब परमाणु जैसे जड़ भी चाहे जितनी भारी हल्की, स्निग्धता-रूक्षतारूप द्रव्य नहीं होता। ओहो..हो.. ! तो ऐसा द्रव्य, भगवान आत्मा का द्रव्य, वह संसार की पर्यायरूप कैसे आवे और कैसे जाये ? कैसे हो ? इसलिए इसकी दृष्टि द्रव्य में जाने पर, वह सिद्धरूप परिणमने की योग्यता अन्दर हो जाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? लो, यह ४०वाँ श्लोक हुआ। २७वीं गाथा !

गाथा-२७

एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं।।२७।।

एकरसरूपगन्धः द्विस्पर्शः स भवेत्स्वभावगुणः।
विभावगुण इति भणितो जिनसमये सर्वप्रकटत्वम्।।२७।।

स्वभावपुद्गलस्वरूपाख्यानमेतत्। तिक्तकटुककषायाम्लमधुराभिधानेषु पञ्चसु रसेष्वेकरसः, श्वेतपीतहरितारुणकृष्णवर्णेष्वेकवर्णः, सुगन्धदुर्गन्धयोरेकगन्धः, कर्कशमृदुगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाभिधानामष्टानामन्त्यचतुःस्पर्शाविरोधस्पर्शनद्वयम्, एते परमाणोः स्वभावगुणाः जिनानां मते। विभावगुणात्मको विभावपुद्गलः। अस्य द्व्यणुकादिस्कन्धरूपस्य विभावगुणाः सकलकरणग्रामग्राह्या इत्यर्थः।

तथा चोक्तं पञ्चास्तिकायसमये ह्न

एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि।।

उक्तञ्च मार्गप्रकाशे ह्न

(अनुष्टुप्)
वसुधान्त्यचतुःस्पर्शेषु चिन्त्यं स्पर्शनद्वयम्।
वर्णो गन्धो रसश्चैकः परमाणोः न चेतरे।।

तथाहि ह्न

दो स्पर्श इक रस गंध वर्ण स्वभावगुणमय है वही।
सर्वाक्षगम्य विभावगुणमय को प्रगट जिनवर कही॥२७॥

अन्वयार्थ :— [एकरसरूपगंधः] जो एक रसवाला, एक वर्णवाला, एक गंधवाला और [द्विस्पर्शः] दो स्पर्शवाला हो, [सः] वह [स्वभावगुणः]

स्वभावगुणवाला [भवेत्] है; [विभावगुणः] विभावगुणवाले को [जिनसमये] जिनसमय[१] में [सर्वप्रकटत्वम्] सर्व प्रगट (सर्व इन्द्रियों से ग्राह्य) [इति भणितः] कहा है।

टीका :—यह, स्वभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है।

चरपरा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा - इन पाँच रसों में का एक रस; सफेद, पीला, हरा, लाल और काला — इन (पाँच) वर्णों में का एक वर्ण; सुगन्ध और दुर्गन्ध में की एक गंध; कठोर, कोमल, भारी, हलका, शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकना) और रूक्ष (रूखा) — इन आठ स्पर्शों में से अन्तिम चार स्पर्शों में के अविरुद्ध दो स्पर्श; यह, जिनों के मत में परमाणु के स्वभावगुण हैं। विभावपुद्गल, विभावगुणात्मक होता है। यह द्वि-अणुकादिस्कन्धरूप[२] विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है — ऐसा (इस गाथा का) अर्थ है।

इस प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (८१वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —

'एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि॥'

'(गाथार्थ :—) एक रसवाला, एक वर्णवाला, एक गंधवाला और दो स्पर्शवाला, वह परमाणु, शब्द का कारण है; अशब्द है और स्कन्ध के भीतर हो, तथापि द्रव्य है (अर्थात्, सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।'

और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

परमाणु को वसु स्पर्श के अन्तिम चार स्पर्शों में।
द्वय स्पर्श इक वर्ण गन्ध रस एक-एक युत ही जानें॥

'(श्लोकार्थ :—) परमाणु को आठ प्रकार के स्पर्शों में अन्तिम चार स्पर्शों में से दो स्पर्श, एक वर्ण, एक गंध तथा एक-एक रस, समझना; अन्य नहीं।'

---

१. समय=सिद्धान्त, शास्त्र, दर्शन, मत।

२. दो परमाणुओं से लेकर अनन्त परमाणुओं का बना हुआ स्कन्ध, वह विभावपुद्गल है।

गाथा-२७ पर प्रवचन

एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं ।।२७।।

गुण-गुण शब्द प्रयोग किया है, हों! तथापि यह पर्याय है।

दो स्पर्श इक रस गंध वर्ण स्वभावगुणमय है वही।
सर्वाक्षगम्य विभावगुणमय को प्रगट जिनवर कही ॥२७॥

टीका :—**यह, स्वभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है। चरपरा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा - इन पाँच रसों में का एक रस;....** परमाणु में होता है। समझ में आया? क्योंकि परमाणु का गुण रस है, वह तो त्रिकाल है। यह तो पर्यायें हैं, ये पर्यायें हैं। खट्टी-मीठी यह पर्याय है, गुण नहीं। क्या कहा? पण्डितजी! पर्याय है यह तो, रस गुण है। यह खट्टा-मीठा रस, यह तो पर्याय है। यह रस गुण भी पर्याय में आया नहीं।

सफेद, पीला, हरा, लाल और काला — इन (पाँच) वर्णों में का एक वर्ण;... है। वर्णों में से। वर्ण अर्थात् यह गुण का नहीं। वर्ण गुण तो त्रिकाली है, उसकी यह पर्याय है। यहाँ पर्याय को गुण कहने में आता है। समझ में आया? तथापि यह काली, लाल, आदि पर्याय में द्रव्य नहीं आया। नित्य रस से भरपूर तत्त्व ऐसी पर्यायरूप नहीं आता। आहा..हा..! यह वीतराग का विज्ञान ही अलग प्रकार का है। यह पहले अजीव का पढ़ा नहीं था न। अब कहते हैं यह पढ़ो।

सुगन्ध और दुर्गन्ध में की एक गंध;... सुगन्ध-दुर्गन्ध तो पर्याय है। गन्ध नाम का गुण त्रिकाल है। आहा..हा..! अरे! परमाणु का गुण, ध्रुव भी जहाँ पर्याय में नहीं आता, द्रव्य-पर्याय में नहीं आता इसका अर्थ कि द्रव्य के अनन्त गुण पर्याय में नहीं आते। आहा..हा..! वीतराग के कथन वीतरागभाव की प्रसिद्धि करते हैं। आहा..हा..! भगवान! चाहे जिस पर्यायरूप तेरी दशा हो, उसे न देख, ऐसा कहते हैं। तेरा त्रिकाल तत्त्व पर्याय में नहीं आया, उसे देख। यह ऐसा आता है न? देखो न! चौदह मार्गणा में, भाई! मार्गणा न देख, मार्गणा, वह जीव द्रव्य में नहीं है। आहा..हा..! तू भव्य-अभव्य-ऐसा न देख। आहा..हा..!

मुमुक्षु : द्रव्य तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य को देखा तो यह समाप्त हो गया। आहा..हा..! चौदह मार्गणा में आता है न? गति-जाति मार्गणा आती है न? वह जीव में नहीं है ऐसा आयेगा। जीव अधिकार में। जीव में नहीं। तब वह जीव नहीं? कि नहीं। यह पर्याय जीव, वह व्यवहार जीव। आहा..हा..! गजब बात भाई! केवलज्ञान में जीव आया नहीं। एक अंश में पूरा अंशी नहीं आता, उसमें नहीं समाता। आहा..हा..! ज्ञान और आनन्द गुण का तत्त्व-सत्व प्रभु, उसकी पर्याय में नहीं आता। ऐसे ये परमाणु ऐसे रस में नहीं आते, पर्याय में है। आहा..हा..!

कठोर, कोमल, भारी, हलका,... देखो अब आया। **हलका, शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकना) और रूक्ष (रूखा) — इन आठ स्पर्शों में से अन्तिम चार स्पर्शों में के अविरुद्ध दो स्पर्श;...** एक परमाणु में लेना है न? एक परमाणु में दो अविरुद्ध दो स्पर्श। शीत हो तो उष्ण नहीं हो और उष्ण हो तो शीत नहीं हो। उष्ण, चिकना, शीत नहीं। **यह, जिनों के मत में...** ओहो..हो..! वीतराग भगवान के अभिप्राय में **परमाणु के स्वभावगुण हैं।** ये परमाणु द्रव्य की स्वभाव पर्यायें हैं। **विभावपुद्गल, विभावगुणात्मक होता है।** दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु स्कन्ध, वह विभावगुण है। देखो! विभावगुण अर्थात् विभावपर्याय।

यह द्वि-अणुकादिस्कन्धरूप विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है... वह परमाणु इन्द्रियग्राह्य नहीं कहा था। यह पर्याय इन्द्रियग्राह्य है। **विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है — ऐसा (इस गाथा का) अर्थ है।** आहा..हा..!

इस प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (८१वीं गाथा द्वारा) कहा है कि — लो, यह कल कहा था वह।

'एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि॥'

लो, एक यह स्कन्ध है, अंगुली का पिण्ड। इसमें एक-एक रजकण, अपने स्वचतुष्टय से रहा हुआ है। नित्य, पर्याय में तो आया नहीं, परन्तु पर्याय यहाँ दूसरे को स्पर्शित नहीं है, ऐसा कहते हैं। एक रस की पर्यायवाला परमाणु, एक रंग की पर्यायवाला परमाणु, एक गन्धवाला परमाणु और दो स्पर्शवाला परमाणु। **शब्द का कारण है;...** परन्तु स्वयं **अशब्द है...** परमाणु स्वयं अशब्द है। एक रजकण इसमें चाहे जो, वह उसमें शब्द

नहीं है परन्तु शब्द का कारण है। **स्कन्ध के भीतर हो, तथापि...** आहा..हा..! देखो तो सही! ये रजकण देह में हों। उसमें-स्कन्ध में हों **तथापि द्रव्य है (अर्थात्, सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।** शुद्ध का अर्थ अकेला। वापस है तो विभाव ऊपर परिणमित हुआ, भाई! यह शुद्ध डाल दिया।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; परान्तु तथापि वह बन्ध पर्यायवाला कहा। पर्यायवाला भी... ऐसा है। पर्यायवाला कहा न। **परमाणु, शब्द का कारण है; अशब्द है और स्कन्ध के भीतर हो, तथापि द्रव्य है...** ऐसी पर्यायवाला। **(सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।** वस्तुरूप से गिनो तो शुद्धद्रव्य है। पर्यायरूप से गिनो तो पर के सम्बन्धरहित भिन्न चीज़ है। समझ में आया? कहो, इतने में एक रहा हुआ है, परन्तु वह अपने स्वचतुष्टय में है। आहा..हा..! ऐसा ज्ञान सर्वज्ञ के अतिरिक्त और वह भी उनके ज्ञानगम्य हो सके इस प्रकार से... समझ में आया? एक-एक परमाणु के स्कन्ध में होने पर भी **(सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।** लो, आहा..हा..!

और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि — देखो, शब्द का कारण है। कौन? एक परमाणु, हों! शब्द का कारण आत्मा है ऐसा नहीं। यह होंठ शब्द का कारण हैं, ऐसा नहीं। शब्द का कारण परमाणु है। आहा..हा..! आत्मा शब्द का कारण नहीं। शब्द की उत्पत्ति आत्मा है, इसलिए होती है, ऐसा नहीं। आहा..हा..! भाई! गजब बात है।

मुमुक्षु : होंठ चले तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : होंठ है वह वर्गणा दूसरी है - आहारवर्गणा है। यह (शब्द) शब्दवर्गणा है। आहारवर्गणा, वह शब्दवर्गणा की उत्पत्ति नहीं है। आहा..हा..! भारी कठिन काम जगत को। अभी बाहर परद्रव्य का कर्ता न माने तो दिगम्बर जैन नहीं, ऐसा कहते हैं। अरर! क्या किया तूने भगवान? अरे! अकेला व्यवहार से भिन्न है इतना ख्याल में लेना तुझे कठिन पड़ता है। आत्मा शरीर में होने पर भी शरीर से अत्यन्त भिन्न है। राग के साथ दिखने पर भी राग से अत्यन्त भिन्न है। और पर्यायवाला दिखने पर भी द्रव्य, पर्याय से भिन्न है। ऐसी दृष्टि किये बिना इसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। कहो, समझ में आया? लो, विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)